752 P
879
H

राष्ट्रीय अभिलेखागार पुस्तकालय
NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
भारत सरकार
Government of India
नई दिल्ली
New Delhi

1338
10/71

आह्वानांक Call No.

अवाप्ति सं० Acc. No. 879

20.1

891.431
P192 Too

Tufan in Hindi,
3 copies.
Govt of U.P.

तूफ़ान

321/63

प्रहलाद पांडेय "शशि"

राष्ट्रीय कवि प्रहलाद पाँडेय "शशि" की लिखी हुई

अपने युग की ज्वलंत कविताओं के क्रांतिकारी संग्रह

"विद्रोहिणी" पर लोकमत

—इन रचनाओं में आपको किसी "वाद" का स्वर नहीं मिलेगा, "क्रांति" का शंखनाद ही सुन पड़ता है। शब्दों का आडम्बर नहीं, भावों की गहराई भी नहीं; हैं केवल जोश भरी बातें जो कवि के उत्पीड़ित जीवन की प्रतिक्रिया स्वरूपा प्रतीत होती हैं। युगवाणी में भावों का उन्मेष और कला का विलास अपेक्षित है भी नहीं, अतः विद्रोहिणी का कवि यदि अपने को समय का प्रतिनिधि समझता है, तो वह अपने प्रति ईमानदार है, और अपनी रचनाओं के प्रति भी। कविताओं की अन्तर्धारा निम्न पंक्तियों में प्रवाहित हो रही है—

"अपने युग का मैं प्रलयंकर, लाल हुताशन बील चलूं मां।
ज्वालागिरि-सा धधक उठूं मैं, अंधड़ के प्रतिकूल चलूं मां॥"

* * *

"भूखों, नंगों का सेनानी, बोल रहा मैं युग की वाणी।
महल झोपड़ी एक बनादे, मेरी नव सत्ता कल्याणी॥"

आज के कविता प्रेमियों को विद्रोहिणी से संतोष होग

हिन्दी 'स्वराज्य' खंडवा

६ - ६ - ४३.

स्वर्गीय मित्र रमाकान्त द्विवेदी की स्मृति में—

संस्थापित "युग प्रवर्त्तक ग्रन्थमाला" का दूसरा पुष्प

तूफ़ान

निज आँखों से निज जननी के,
जो सतीत्व को लुटता देखे।
बलिदानी बकरों के जैसा,
शनैः शनैः दम घुटता देखे॥
थू है उस मानव का जीवन,
लानत उसके मानवपन पर।
नहीं उबाल भरे शोणित में,
है धिक्कार कुटिल यौवन पर॥

रचयिता—

प्रहलाद पांडेय "शशि"

—सर्वाधिकार लेखकाधीन।

मूल्य ॥) आना

प्रकाशक-
युग प्रवर्तक ग्रन्थमाला कार्यालय
उज्जैन [मध्य भारत]

IMPERIAL RECORD
No. 3
Date 19.1.44
Department.

प्रथम संस्करण
१०००
मई १९४३ ई०

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
No 879
Date 23.12.71
GOVT. OF INDIA

मुद्रक-
श्री उमेद प्रेस, रामपुरा बाज़ार,
कोटा (राजपूताना).

पथ का प्रकाश

संघर्ष का दूसरा नाम ही ज़िन्दगी है। जो राष्ट्र, समाज और जाति संघर्ष की भयंकरता से भयभीत होकर जितनी दूर भागती जाती है प्रकृति उसी तरह क्रमशः उसकी ज़िन्दगी का अधिकार छीनती जाती है। संघर्ष या युद्ध में अपने आप को होम देने वाला मानव समुदाय अन्त में जय-लाभ करता है। सृष्टि में शान्ति और संघर्ष ये दोनों वस्तुएं दिन और रात की तरह सुनिश्चित हैं। जब तक मानव का अस्तित्व है, स्वार्थ की चक्की बराबर चलती रहेगी। स्वार्थ से ही युद्ध की उत्पत्ति होती है। मानव में इतनी शक्ति नहीं है कि वह अधिक दिनों तक युद्ध या संघर्ष के महानाश में लगातार चलता रहे इसी के परिणाम स्वरूप शान्ति की उत्पत्ति होती है। यह शान्ति कुछ काल तक ठहरती है फिर वही बढ़े हुए स्वार्थ से युद्ध होता है। श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दन सिंह अपनी पुस्तक "देश दर्शन" में लिखते हैं— कुछ हवा में महल बनाने वाले लोग यह स्वप्न देख रहे हैं कि "सभ्यता के बढ़ते बढ़ते अन्ततः युद्ध और उसकी प्रचंडता मिट जायगी"। पर सभ्यता-मनुष्य के युद्ध प्रिय स्वभाव को नहीं बदल सकती। जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलेगा तब तक संसार से युद्ध

का लोप न होगा और फिर यदि राष्ट्रों की दुर्बुद्धि, असावधानी, आलस्य और अदूरदर्शिता से परस्पर संघर्षण न हो जाया करता, तो मनुष्य जाति की अवनति हो जाती। युद्ध उन्नति का एक आवश्यक कारण है। युद्ध वह डंका है जो देशों को आलस्य-निद्रा में नहीं पड़ने देता और सन्तुष्ट मध्य श्रेणी के लोगों को उदासीनता से जागृत रखता है।

देशाभिमान, उच्चाभिलाषा, निश्छलता, चीमड़ा-पन, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, मेल, बल, विद्या और वीरता आदि अनेक सद्गुण पहले युद्ध से ही प्राप्त हुए और अब भी एकमात्र युद्ध से ही इनकी स्थिति है। युद्ध से ही वीरता के वे गुण आते हैं जो वास्तविक जीवन के कठिन झगड़ों में विजय पाने के लिये आवश्यक हैं।”

हिन्दुस्थान ने कभी किसी देश की सम्पत्ति लूटने खसोटने का प्रयत्न नहीं किया, विदेशियों ने ही सदैव इसे पद-दलित किया, अपना राज्य जमाया, यहाँ की सम्पत्ति लूटकर अपने देशों के खज़ाने भरे। जब से ब्रिटिश-शासन भारत में आया तब से बराबर कमज़ोरी, गुलामी की भावना, अकाल और दरिद्रता से पीड़ित है इसके पूर्व मुसलमानी शासन में भारत सम्पन्न और समृद्ध था। आज हिन्दुस्थानी इस बात को भलीभांति समझ चुके हैं कि हमारे देश पर हमारी ही हुकूमत चाहिये, जिसका

नाम है पूर्ण स्वतन्त्रता या ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के शासन से सबन्ध-विच्छेद। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ५० वर्षों से लगातार प्रयत्न किया जा रहा है उसमें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। जब तक हम स्वतन्त्र नहीं होते तब तक हमारी क़लम, वाणी और विचार तथा कला और व्यापार की उन्नति होना असम्भव है। इसी लिये आज के युग का साहित्यकार भी अपने देश की पूर्ण स्वाधीनता के लिये अपनी क़लम का उपयोग कर रहा है ताकि स्वतन्त्र होने पर नव निर्माण कर सके। हमारा देश सदैव मानवीय आदर्शों पर चलता रहा है आज भी वह अपने उक्त आदर्श से नहीं गिरा है—वह है दूसरों का विनाश न करने की प्रवृति या अहिंसा। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उसने अहिंसात्मक विद्रोह की घोषणा की, जो संसार की विद्रोहात्मक राजनीति की बीसवीं सदी की महत्वपूर्ण घटना है—उज्ज्वल आत्मबल का प्रयोग है। एक शस्त्रहीन और सत्ता द्वारा लड़ाये जाने वाले असंगठित देश का यह वैज्ञानिक चमत्कार है जो संसार के संघर्ष के इतिहास में अपना गौरव पूर्ण स्थान रखेगा।

मेरी कविताएँ उसी अहिंसात्मक विद्रोहकर्ता की विद्रोहात्मक आवाज़ का चित्रांकण मात्र हैं। यदि मेरे राष्ट्र को इससे कुछ भी बल प्राप्त हो सका—जिस का मुझे दृढ़ विश्वास है-तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

* * *

शीघ्रता और असुविधाओं से कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं विज्ञपाठक सुधार लेंगे ऐसी आशा है। पृष्ठ ४९ के तीसरे पद की अन्तिम दो पंक्तियां—

जीवन और मरण दोनों का,
सुधा-गरल पीना ही होगा ॥

पढ़ी जावें।

*　　　*　　　*

जिन सज्जनों ने अग्रिम ग्राहक बनकर और विशेष आर्थिक सहयोग देकर हमारे कार्य में योग दिया है वे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन सज्जनों ने इस प्रकाशन में ११) रु० दिये हैं उनके नाम निम्न लिखित हैं—

श्री रामप्रसाद जी 'विद्रोही' बड़वाह, बाबु जड़ावचंद जैन एम. एल. सी. मंडलेश्वर, श्री पं० विद्यानन्द जी बी. ए. आर्योपदेशक लाहौर, पद्मकुमार सिंहजी श्यामसुखा इन्दौर, बाबू पूनमचन्दजी गर्ग उज्जैन, सेठ हुकमचन्दजी उज्जैन.

अन्त में हम अपने अहिंसात्मक विद्रोह की सफलता और विश्व में एक नवीन साम्यपूर्ण प्रजा सत्तात्मक शासन व्यवस्था की कामना करते हैं।

क्रान्ति अमर हो !

२६ जनवरी १९४२
स्वाधीनता दिवस

—प्रहलाद पांडेय 'शशि'

समर्पण

—मेरी राष्ट्रीय तपस्या पर अपना प्राणोत्सर्ग करने वाले मेरे पूज्य पिता पण्डित श्यामलाल जी पांडेय की स्वर्गस्थ आत्मा को—

—जिसके पवित्र मातृत्व की छाया में मैं अपने रुग्ण जीवन को भूलकर मां भारती के पूजन में तूफ़ान की तरह आगे बढ़ता जा रहा हूँ अपनी उसी मुंह बोली माँ रुक्मिणी देवी पंवार को—

—पूज्य महात्मा गांधी तथा उनके अहिंसक साथियों को—

—संसार व्यापी युद्ध की लपटों पर खेलने वाले श्रीमान् चर्चिल, रूज़वेल्ट, हिटलर, मुसोलिनी, स्टॉलिन, तोजो, जनरल चाङ्ग-काई शेक और उनके साथियों को—

तथा—अपनी आज़ादी के लिये अपना बलिदान करने वाले विश्व के अमर शहीदों को मेरा यह तूफ़ान समर्पित है।

"शशि"

हमारे कार्यालय से प्रकाशित क्रांतिकारी पुस्तकें

विद्रोहिणी (काव्य) ले० प्रह्लाद पांडेय "शशि" १॥)

तूफ़ान " " " ॥)

'शशि' लिखित पुस्तकें

शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं !

१—सजलघन (काव्य)

२—मां के आंसू (कहानियां)

३—लीडर-लीला (उपन्यास)

४—ग़रीबी का अभिशाप (उपन्यास)

५—पिनाकी (काव्य) सम्पादक "शशि"

६—प्रभंजन श्री नरेन्द्रकुमार धीर "पुष्प"

—— × ——

प्राप्ति स्थान :—

१-मोहन न्यूज एजेन्सी, कोटा-राजपूताना।

२-एम० आर० तुलसीराम बुकसेलर, नसिया रोड़, इन्दौर।

३-हिन्दुस्थान स्टोर्स, भोपाल (मध्य भारत)

४-बुन्देलखण्ड बुकडिपो, झांसी (यू० पी०)

५-जैन ब्रदर्स सनावद, होल्कर राज्य।

युग प्रवर्त्तक ग्रन्थमाला कार्यालय, उज्जैन (मध्य भारत)

तूफ़ान

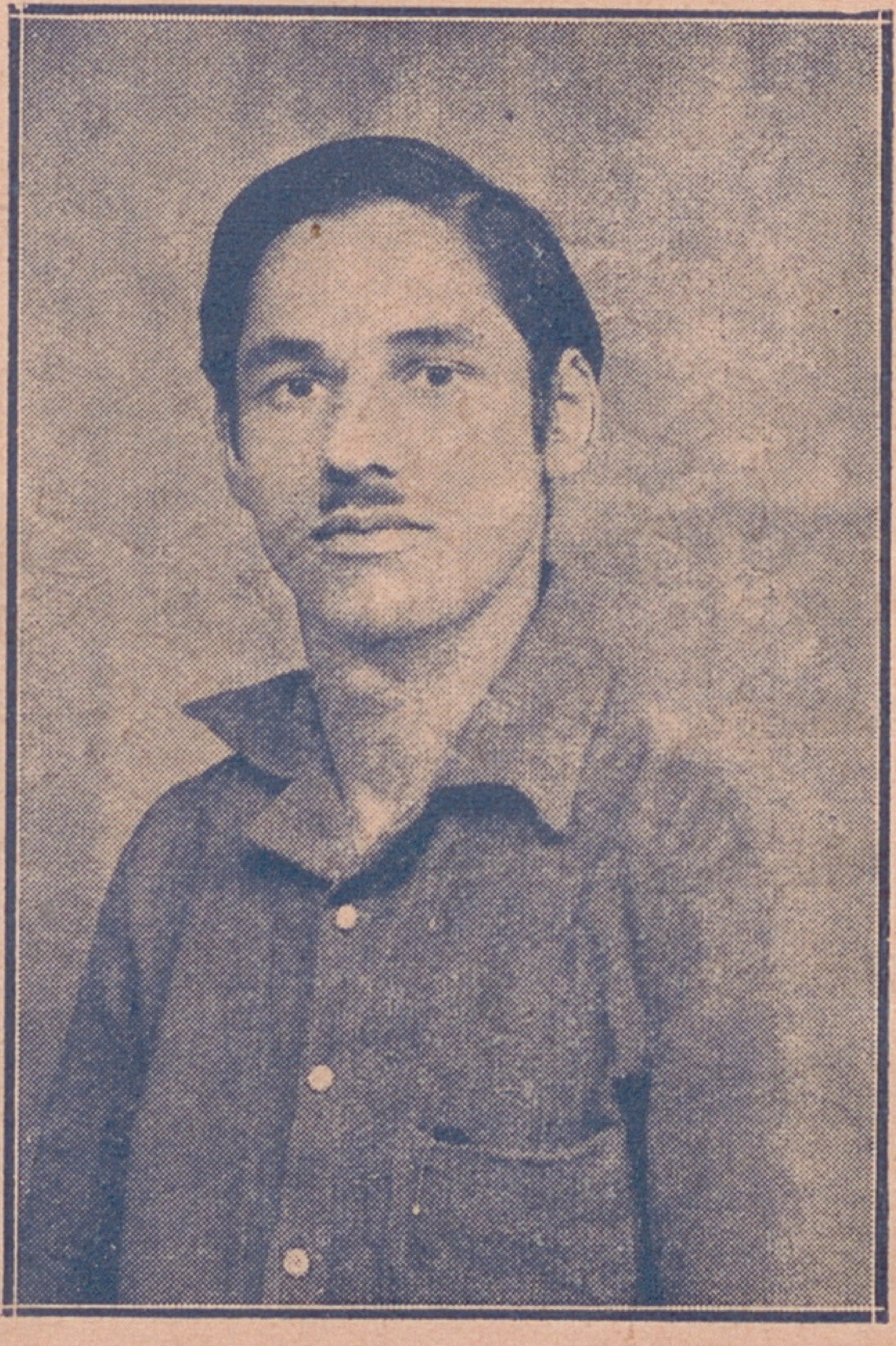

तूफ़ान का कवि "शशि"

लो रोको तूफ़ान चला मैं

अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको ! तूफ़ान चला मैं।

विश्व-शान्ति की जननी मेरी,
विद्रोही हुंकारें रोको।
जग को जीवन देने वाली,
लाल रुधिर की धारें रोको॥

वह्नि उगलती लाल लपट से,
भरी हुई श्वासों को रोको।
युगानुयुग से धधक रहे इन,
प्रलयंकर प्राणों को रोको॥

जहाँ मुझे जिसने भी रोका,
वहीं बना रे उसका मरघट।
जिसने मुझे कुचलना चाहा,
फूट पड़ा उसका जीवन-घट॥

मेरी चिर प्रचंड ज्वाला से,
सूखा सरिताओं का पानी।
दिया पहाड़ों ने मुझको पथ,
सुन मेरी कल्याणी वाणी॥

मङ्गल वेला जान प्रलय की,
लिये क्रान्ति का गान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

मुझे न रोक सका निज पथ से,
खोल तीसरा दृग शिव शङ्कर।
झुका चरण की हर ध्वनियों पर,
यौवन से उफनाता सागर॥

मैं हूँ तरुण तपस्वी, मेरी—
आँखों में नव युग का सपना।
सूर्यमुखी-सी साथिन मेरी,
क्रान्ति, रुधिर-अनुरंजित वसना॥

तड़ित गर्जना ने भादों के,
मेघ चीर ले ले अनुकम्पन ।
मेरी जागृत तरुणाई पर,
किया नित्य ही आत्म समर्पण ॥

सत्वर निकले दानवता का,
अनाचार से भरा जनाज़ा ।
युग युग से सुनता आया हूँ,
तरुणाई का यही तक़ाज़ा ॥

विघ्न-जयी निज मातृभूमि के,
प्राणों का अभिमान चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

सांसों में भूचाल, पलक में,
सर्व हारिणी ज्वाल समेटे ।
मैं स्वतन्त्र उन्मुक्त चरण में,
पूर्ण विश्व का मरण लपेटे ॥

अन्यायों के चक्रव्यूह में,
चला आज लो मेरा स्यंदन ।
रोको ! रोको !! अत्याचारों,
आज तुम्हें मेरा आमन्त्रण ॥

ओ ! दुनियां के राज दण्ड—
मुझ विद्रोही के सम्मुख आओ ।
अपनी दमन और ज़ुल्मों की,
ज़हर भरी तलवार उठाओ ॥

इसे भूलना मत, ओ ज़ालिम !
ज़ुल्मी बार बार हैं मरते ।
एक बार-बस एक बार ही,
वीर मौत से खेला करते ॥

सुप्त मसानों को सुलगाता,
निखिल विश्व का त्राण चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

यह क्या, तुम तो मेरे सम्मुख,
ये हथकड़ियां लेकर आये ?
और साथ में ये लोहे की,
अरे ! बेड़ियां लेकर आये ?

तुम्हें याद है ? ये फौलादी,
कंठ शूलियों से खेले हैं ।
तुम्हें याद है ? ये फ़ौलादी,
वक्ष गोलियों से खेले हैं ॥

याद न हो--विश्वास न हो,
तो जाकर भगतसिंह से पूछो ।
मानवता के अभिमानी—
आज़ाद चन्द्रशेखर से पूछो ॥

याद न हो तो जलियाँवाला,
की क़ब्रों से जाकर पूछो ।
इतने पर भी याद न हो, तो,
विधवा मां--बहिनों से पूछो ॥

राज दंड को खंड खंड कर,
चंड सूर्य गतिमान चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

बोल उठी मां-" बेटा जग की,
तुम ज़ालिम सरकार मिटा दो" ।
बहिना बोली- "जाओ भैया,
जग के अत्याचार मिटा दो ।"

पत्नी बोली-" जाओ प्रियतम !
काटो परवशता के बंधन ।
जाओ ! मम सिन्दूर भाल के,
आज मिटादो करुणा-क्रंदन ॥"

मरणासन्न पिता बोला —
"अफ़सोस ग़ुलामी में मरता हूँ ।
किन्तु देश की आज़ादी का-
भार तुम्हारे सिर धरता हूँ ॥

याद रहे तुम आर्य धर्म से,
एक क़दम पीछे मत हटना ।
है आशीश हमारी तुमको,
करो पूर्ण सदियों का सपना ॥"

इसीलिये तो प्रलय-काल-सा,
लेकर निज बलिदान चला मैं ॥
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

उसी तरह है प्यारी मसज़िद,
जैसे मुझको मंदिर प्यारा ।
जैसा प्यार मुझे गिरजे से,
वैसा ही मुझको गुरुद्वारा ॥

ना हिन्दू ना मुसलमान मैं,
ना मैं सिक्ख और ईसाई ।
सब धर्मों का मूर्त रूप मैं,
हूँ सबका मां जाया भाई ।

मैंने राष्ट्र धर्म को पूजा,
सीखा सब का स्वागत करना ।
मेरी जाति अरे "विद्रोही"
मेरा धर्म, बग़ावत करना ॥

मैं कल्याण-मार्ग का पंथी,
और शांति का अचल उपासक ।
क्रांति-काल की हर लपटों पर,
चलने वाला दुःख विनाशक ॥

आज द्रोह के अग्नि-मार्ग पर,
लो ज्वलंत अभियान चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

अपनी बस्ती में प्राणों का,
त्याग जगाने मैं आया हूँ ।
ज़ालिम तेरी बस्ती में अब,
आग लगाने मैं आया हूँ ॥

सम्हल क्रूर ! साम्राज्य-वाद की,
नाव डुबाने मैं आया हूं ।
निखिल विश्व को पारतंत्र्य से,
मुक्ति दिलाने मैं आया हूँ ॥

सुन मेरी तू आज घोषणा,
मैं आज़ाद देश का वासी ।
तुझे लगाने चला आज मैं,
तेरे अनाचार की फाँसी ॥

अब तक मैंने जाना था रे,
केवल "दुश्मन को सिर देना" ।
किन्तु आज मैं जान चुका हूँ,
अरे "शत्रु का सिर ले लेना" ॥

कभी व्यर्थ ना होने वाला,
अंगारों का बाण चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

जब जब जला अरे ! घर मेरा,
महा प्रलय की तेज़ अगिन में ।
जब जब मेरी श्वास रुंधी रे !
सत्यानाशों के दुर्दिन में ॥

अरे ! लहू का घूंट पिया जब,
खाकर मैंने जग की ठोकर ।
विवश लाज नारी ने बेची,
जब जब धनवानों के धन पर ॥

घबरा कर जीवन से जब जब,
कालकूट पी डाला मैंने ।
जब जब निज कंकाल देह में,
अरे लगाई ज्वाला मैंने ॥

जब जब बेचैनी से मेरे,
दृग में छाया घोर अंधेरा ।
जब जब अपनी आज़ादी के,
लिये तड़प उट्ठा दिल मेरा ॥

तब तब तुमने मुझे बताओ,
इसका कुछ प्रतिकार किया है ?
मेरे हड्डी के ढाँचे से,
क्या तुमने कुछ प्यार किया है ?

मेरे रोने और तड़पने, की—
—तुमको परवाह रही क्या ?
दुख से गलने वाले मेरे,
प्राणों की कुछ चाह रही क्या ?

कब तुमने बतलाओ मुझको,
पाश-मुक्ति के गीत सुनाये ?
मेरी टूटी हुई क़ब्र पर,
कब तुमने दो अश्रु बहाये ?

सदा झुकाया मस्तक तुमने,
कंचन की ढेरी के आगे ।
सदा मिले तुम खून चूसने—
—वाले दल के आगे आगे ॥

तुमने मेरी जली झोपड़ी,
पर सोने के महल बनाये ?
तुमने मेरे शव पर चढ़कर,
मुझपर ही शोले बरसाये ?

"मुझे चाहिये रोटी", जब मैं,
बोल उठा निज कातर बोली ।
तब तुमने बेदर्द खिलाई,
मुझको बन्दूकों की गोली ॥

फिर भी मुझसे पूछ रहे हो,
तुमने क्यों विद्रोह किया है ?
मेरे जलते दिल में देखो,
मैंने क्यों विद्रोह किया है ॥

त्रस्त विश्व के संबल स्वर में,
ज़ालिम तुमसे पूछ रहा हूँ ।
"क्या मैं विप्लव-राग सुनाकर,
शोषित जग को चूस रहा हूँ ?"

सावधान ! तुम सुनो ! सुनो !!
मैं मनुष्यत्व का नम्र पुजारी ।
मैं हूँ नहीं तुम्हारा दुश्मन,
मुझको तो आज़ादी प्यारी ॥

मैं विद्रोही हूं "ज़ुल्मों" से,
सदा द्रोह करता आया हूँ ।
युग की उखड़ी सांसों में,
तूफ़ान सदा भरता आया हूँ ॥

अब चिर अन्यायों के आगे,
अपनी छाती खोल चला मैं ।
फांसी पर चढ़ आज शहीदों—
की बोली फिर बोल चला मैं ॥

अपने शुष्क हृदय में लेकर,
अंतिम एक उफान चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

विद्रोही किसान

जर्जर मेरे टूटे फूटे,
छप्पर में चूता है पानी ।
किसी एक कोने में सिमटी,
खड़ी भीगती मेरी रानी ॥

जिसकी गोदी में सरदी से,
नन्हा बच्चा कांप रहा है ।
फटा हुआ कुछ गीला कपड़ा,
जिसके तन को ढाँक रहा है ॥

जल-भरे पवन के झोकों से,
तन-मन छेद रहा है कंपन ।
महा मरण के दरवाज़े पर,
हर क्षण रहता मेरा जीवन ॥

मैं खेतों पर खड़ा भीगता,
मेह बरसता रात अंधेरी ।
इसी तरह तप में कटती हैं,
बरसातों की रातें मेरी ॥

सूर्य व्योम से अग्नि बरसता,
धक धक जलती धरती सारी ।
उग्र प्रभंजन की लपटों से,
छाती प्राणों में अंधियारी ॥

गहरे तरु की छांह खोजते,
आतप से आकुल पशु-पच्छी ।
सिंह गुहा तज किसी नदी के,
तीर पड़े हैं आमिष-भच्छी ॥

अग्नि भरे बैसाख-जेठ में,
केवल मैं तपता खेतों पर ।
धरती और बैल हल मेरे,
रहते हैं नित साथी-सहचर ॥

सदियाँ गुज़रीं, इसी तरह मैं,
उग्र तपस्या करता आया ।
दीपक-सा जल जल कर जग में,
मैं प्रकाश नित भरता आया ॥

मेरे इस तिल-तिल मिटने का,
किसने मोल किया बोलो तो !
मेरे जग के हित-साधन का,
किसने तौल किया बोलो तो ?

मैंने उस बस्ती को देखा,
जिसे नगर कहता है मानव ।
जहां सभ्य रहते हैं, जिसमें,
होता संस्कृतियों का उद्भव ॥

मैंने देखा जगह जगह पर,
बड़े बड़े प्रासाद खड़े हैं ।
जिनमें है नक्काशी बाहर,
ऊपर कंचन-कलश चढ़े हैं ॥

मैंने देखा राजमहल भी,
थाने और कचहरी देखे।
इधर उधर बंदूक लिये कुछ,
आते-जाते प्रहरी देखे॥

मंदिर देखे, मसज़िद देखीं,
पंडित और मौलवी देखे।
शांत और गंभीर किन्तु कुछ,
आकुल बड़े जोतिषी देखे।

जो मिला मुझे-बेदर्द मिला।
कोई मिला मुझे बातूनी,
मैंने देखा अरे यहां तो,
पड़ी सभी को अपनी अपनी॥

पैसा दिया जिसे, बस उससे,
चिर सुख का वरदान मिला।
दिया नहीं जिसको कुछ उससे,
अभिशाप मिला, अपमान मिला॥

होती है पैसे की पूजा,
नहीं मनुज का मोल यहाँ पर।
लाखों नर का मैंने जीवन,
देखा महा नर्क से बदतर॥

आखिर इसका कारण क्या है,
क्यों प्राणों में ज्वाला जगती?
है बस्ती आबाद मगर यह,
क्यों कर सूनी सूनी लगती?

मैंने देखा इसी तरह सब,
दुनियाँ आज जली जाती है।
महानाश के क्रूर नृत्य से,
स्मशान बनती जाती है॥

सहसा घूम गया आँखों में,
मेरा वह अतीत उज्वलतर।
जब था मेरा खेत और यह,
मेरा गाँव स्वर्ग से बढ़कर॥

समझ गया मैं पराधीनता,
सब पापों का श्रोत भयंकर।
इसके बिना मिटाये जग में,
जीना महा नर्क से बदतर॥

जाकर आज सुना दो मेरा,
गीत महल की दीवारों को।
जाकर आज सुनादो मेरा,
गीत रुद्र की हुंकारों को॥

जाकर मेरा गीत सुना दो,
ज़ालिम की उन तलवारों को।
जाकर मेरा गीत सुनादो,
चिर सुषुप्त उन लाचारों को॥

मेरा गीत सुना दो क्रोधित,
चंडी की उन किलकारों को।
मेरा गीत सुनादो जल--थल,
और व्योम के उन तारों को॥

"मेरे" हल पर रखे हाथ ये,
आज़ द्रोह पर हैं आमादा।
सहन नहीं है मुझे आज यह,
दुनियां की थोथी मर्यादा॥"

मुझे मिटाने वालों का अब,
करने को सिर-दान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

———

विद्रोही मज़दूर :—

चारों ओर निशा अन्धियारी,
है सुनसान धरित्री--अम्बर।
हुए जलज के साथ नींद में,
ग़ाफ़िल सारे मौन सरोवर॥

सोये हैं तरुओं पर पंछी,
गहरी नींद भरे आंखों में।
प्यार भरे बेहोश छिपे हैं,
बच्चे भी जिनके पंखों में।

मारुत भी पत्तों की झुरमुट-
-में चुपचाप कहीं सोता है।
थके हुए पंथी-सा अपने,
घोर परिश्रम को खोता है॥

अर्द्ध निशा, चन्दा भी सोया,
अभी अभी जो जाग रहा था।
पृथ्वी को अलमस्त बनाता,
मिटा हृदय का ताप रहा था॥

लज्जवन्ती कोयल भी सोई,
जान मोहिनी रात अन्धेरी।
अमराई में किसी डाल पर,
लिये हृदय की बात अधूरी॥

केवल मैं करघों का साथी,
खड़ा कारखाने में जगता।
विवश विकल असहाय त्रसित सा,
आंसू पी ग़म खाकर रहता॥

कितनी सन्ध्या, प्रात, रात, दिन,
महिने और वर्ष हैं बीते।
रहे परिश्रम करने पर भी,
मेरे कर रीते के रीते॥

जाग रहे प्रहरी-से ऊपर,
नभोदेश में श्वेत सितारे।
जाग रहे कुछ बोल रहे हैं,
सरिताओं के सजल किनारे॥

चीर भयंकर तिमिर रात का,
जुगुनू जाग रहे दीवाने।
जाग़ रहे वैभव के मद में,
घोर पतन के मधुर तराने॥

सांयं सांयं करती है धरती,
अर्द्ध निशा के कृष्णांचल में।
लिये एक हलकी ख़ामोशी,
जाग रहा है पाप महल में॥

अचिर सुंदरी जाग रही है,
पतन-भरे अभिशापों वाली।
स्वर्ण-पात्र में सुरा जागती,
छूपापी अधरों की लाली॥

पी शराब मिल मालिक जगता,
बोल रहा कुछ अस्फुट वाणी।
जो है लाखों मज़दूरों की,
क़िस्मत का कहलाता स्वामी॥

झोपड़ियों में, नावदान से,
की जाती है जिनकी समता।
रोगी बच्चे के सिरहाने,
जाग रही है मां की ममता॥

कहीं जागती भूखे-व्याकुल,
कितने ही प्राणों की पीड़ा।
कहीं जागती श्रमिक वर्ग के,
असफल अरमानों की क्रीड़ा॥

पथ के पास पेड़ के नीचे,
भिक्षुक नामक नर की काया।
जाग रही जिसने दिन भर से,
नहीं अन्न का दाना पाया॥

सुन कर मरण-मार्ग के पंथी,
की आहों से भरी कहानी।
किसी झोपड़ी में जगती है,
करुणा भर आँखों में पानी॥

पत्नी रोगी--बूढ़ा कृष तन,
नहीं किसी का जिन्हें सहारा।
दिल में ग़म है, आँखों में दम,
ओठों में आहों का नारा॥

दो दिन से बेचैन जागते,
खुद भूखे बच्चे भी भूखे।
फिर भी समझाते बच्चों को,
जिनके तन मन निर्बल रूखे॥

"मेरे बच्चे—मेरे राजा,"
पानी पी सो रहो रात भर।
सचमुच भोर ज़रूर तुम्हें हम,
देंगे बेटा रोटी लाकर॥"

जाग रहा है दीनों का कवि,
जिसके दृग में खारा पानी ।
लिखता है वह चिर दर्दीली,
अपने युग की अमर कहानी ॥

एक ओर जगता है वैभव,
और दूसरी ओर ग़रीबी ।
जिसे देख दुनियाँ कहती है,
यह तो है किस्मत की खूबी ॥

सत्ताधीशो ! धनवालो !! भर—
—पेट महल में सोने वालो !!!
शोणित पी लाचार मनुज का,
अपना भाग्य बनाने वालो !

तुमने ही जग को सिखलाई,
क़िस्मत की थोथी परिभाषा ।
जिसके बल पर आज बने तुम,
धर्म और किस्मत के त्राता ॥

आज तुम्हारे कारण खूनी,
सत्तायें फल फूल रही हैं।
और करोड़ों नर की क़िस्मत,
नित फाँसी पर झूल रही हैं॥

धनवानो! दुनियाँ पर शासन,
करती आज तुम्हारी टोली।
नरता से क्या मतलब, केवल
प्यारी तुम्हें स्वार्थ की बोली॥

मैं ज़ालिम सदियों का कुचला,
और सताया मानव प्राणी।
आज द्रोह कर उठा संभालो,
सर्व तारिणी मेरी वाणी॥

लेकर नवयुग आज चला लो,
अग्नि अस्त्र आहों का मेरी।
बनी जा रही घोर विषमता,
जलकर आज राख की ढेरी॥

लिये द्रोह की रक्त पताका,
ले नव जीवन-गान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

NATIONAL ARCHIVES LIBRARY
No. 879
Date 23.12.71
GOVT. OF INDIA

विद्रोही सैनिक

बूढ़ी माँ की सर्द सांस से,
फूट पड़ा चिर दुख का झरना।
वृद्ध पिता का पिञ्जर बोला,
"जीने से बेहतर है मरना॥"

बच्चे ने ली तीन हिचकियां,
पकड़ी राह अरे मरघट की।
भूख-प्यास से व्याकुल तन में,
थीं पत्नी की सांसें अटकीं॥

जब तुमने हर क्षण में मेरी,
जलती हुई जवानी देखी।
और दृगों में मज़बूरी की,
आंसू भरी कहानी देखी॥

कहा—"हमारे साथ चलो,
क्या ताक रहे हो खड़े खड़े।"
और बनाया मुझको सैनिक,
देकर कुछ चांदी के टुकड़े॥

आज देश से दूर मृत्यु का,
करने को आह्वान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

——+——

विद्रोही राजपूत :—

बोल उठी क्षत्राणी वीरा,
लेकर निज तलवारें कर में।
"घर में बैठो पहिन चूड़ियां,
मैं जाती हूं आज समर में॥"

आज राजपूताना मुझको,
पद पद पर धिक्कार रहा है।
हल्दीघाटी और पद्मिनी,
का जौहर ललकार रहा है॥

अब तक मैंने चुप रह कर ही,
कितना कारागार सहा है।
अब कैसे चुपचाप रहूँ मैं,
जब सारा जग धिक्कार रहा है॥

राजपूत ! मैं राजपूत !! मैं,
सह न सका इन धिक्कारों को।
कूद पड़ा अब तो संगर में,
मैं सहने क्रूर प्रहारों को ॥

करने आज़ादी पर अपने,
प्राणों को क़ुरबान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

सहसा मुझे आज वे अपने,
बीते दिवस याद हो आये।
देख स्वयं को पराधीन, इन,
आंखों में आंसू भर आये ॥

अश्रु पोंछ कर प्रिय प्रताप की,
उस समाधि के पास गया मैं।
क्षमा मांग कर देश-धर्म हित,
लेने को सन्देश नया मैं ॥

मैं राजपूत, पर कांप उठा,
सुन पड़ी एक झंकार मुझे।
"मातृभूमि परतन्त्र रहे, रे!,
-तू सुख भोगे? धिक्कार तुझे" ॥

"जो गुलाम हैं और जिन्हें कुछ,
मेरे प्रण से प्यार नहीं है।
उन्हें अरे! मेरी समाधि को,
छूने का अधिकार नहीं है" ॥

आज प्रताड़ित हो, प्रताप की,
ले रजपूती शान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

दुख कहता आता है, होगा,
अरे! निधन निश्चय ही मेरा।
इसीलिये आती है रजनी,
होगा कल रङ्गीन सबेरा ॥

धूप, शीत, बरसात सभी ये,
अपने क्रम से आते जाते ।
जग के इस गम्भीर चक्र में,
प्राणि मात्र हैं चक्कर खाते ॥

इसीलिये मैं आज प्रलय की,
तुम्हें सूचना देने आया ।
कभी नहीं जो रुकने वाला,
यही बात बस कहने आया ॥

अपनी चिर मस्ती में चाहे,
पड़े रहो तुम आज अचेतन ।
होगा महाक्रांति से मेरी,
कल अरे! तुम्हारा घोर पतन ॥

अपने आने वाले युग का,
द्रोह-भरा वरदान चला मैं ।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं ॥

मैंने कहा—"तनिक सोचो तुम,
उस दिन थे महमान हमारे।
मैं ग़ाफ़िल था, छल से तुमने,
छीने तुमने सभी सहारे"॥

तुम बोले—"ओ भोले मानव,
कूटनीति ही जान हमारी।
तू हो जा बरबाद, मगर हम,
नहीं तजेंगे निज मक्कारी"॥

बढ़ा एक पग मैंने तुमसे—
कहा—"छोड़ दो देश हमारा"।
तुमने कहा—"असम्भव है यह,
इस पर तो अधिकार हमारा"॥

"-तो बाग़ी मैं, मुझे बग़ावत,
का सन्देश सुनाना होगा।
याद रहे मेरे चरणों में,
तुमको शीश झुकाना होगा"॥

—इसीलिये तो खुली बग़ावत,
का करता ऐलान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

आज न्याय की ओट लिये तुम,
करते अनाचार से सौदा।
रहे सदा आबाद गुलामी,
अरे तुम्हारा यही मसौदा॥

तुम कहते हो—"धर्म भरा यह,
न्यायोचित संघर्ष हमारा"।
मैं कहता हूँ-"यह छलियों का,
रहा अरे! सदियों से नारा"॥

कहता है इतिहास-"अरे तुम,
जिससे बोले मीठी वाणी।
घृणित स्वार्थ के लिये उसी पर,
तुमने निज बन्दूकें तानी"॥

करो ज़ुल्म तुम, न्यायोचित है,
नरता का अभिशाप नहीं है।
तो हमको भी स्वाधिकार के,
लिये "बग़ावत" पाप नहीं है॥

आज तुम्हारे ख़ूनी शासन,
का करने अवसान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

विद्रोही मराठा :—

देख विदेशी ध्वजा फहरते,
झांसी के उस दुर्ग-शिखर पर।
अट्ठारह सौ सत्तावन—
—धिक्कार उठा प्रत्येक प्रहर पर॥

बोल उठा इतिहास शिवा का,
"अरे मराठा कायर—निर्बल।
किया कलंकित तूने मुझको,
है धिक्कार योग्य तेरा बल"॥

भगवां झण्डा बोल उठा-"क्या-
-भूल गया तू अपने प्रण को?
तू है वीर मराठा, मर कर,
हटे, या कि तू जीते रण को"॥

टूक टूक दिल अबलाओं का,
मुझ कायर को धिक्कार उठा।
तूफ़ान भरी आहों से मेरा,
मानव पन चीत्कार उठा॥

आँधी--सा लो आज तुम्हारे,
मिटने का सामान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

हर समाधि से, हर खण्डहर से,
सुन पड़ता है यही एक स्वर।
"हो स्वतन्त्र तू बन विद्रोही,
आज द्रोह का सुन्दर अवसर॥

दूध पिया है जिस माता का,
तू उसकी शान गंवाना मत।
जो क़ब्रों में पड़े हुए हैं,
तू उनकी आन गंवाना मत॥

जिस बहिना ने राखी बाँधी,
तू उसकी लाज गंवाना मत।
बलिदानी! प्रत्येक मूल्य पर,
तू माँ का ताज गंवाना मत॥

करना प्राणों की क़ीमत पर,
एक नया युग तू संस्थापन।
घर घर में हो तेरा शासन,
और सुलभ हो जीवन--यापन॥"

चूर चूर करने को अब तो,
सत्ता का अभिमान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

योग्य समय का तुझे निमन्त्रण :—

निर्बलता, अभिशाप भयंकर,
महापाप जीवन का दुश्मन।
निर्बलता, स्वातंत्र्य शत्रु चिर,
पारतंत्र्य का भीषण बन्धन॥

अरे! सबल को ही युग युग से,
मिलता आया योग सबल का।
होता जग में मित्र नहीं है,
याद रहे कोई निर्बल का॥

सबल सदा निर्बल के तन का,
रक्त चूस जीवित रहते हैं।
धर्म और ईश्वर भी उनसे,
सदा घृणा करते रहते हैं॥

फिर मानव की बात अरे क्या?
वह तो सिर्फ़ स्वार्थ का पुतला।
निर्बलता को त्याग "द्रोह" कर,
तू आँखों में आँसू मत ला॥

उठ, चल तू उस ओर हठीले,
जिधर क्रांति-शर तान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

निर्बल! तेरे उठते ही ये,
सिंहासन काँपेंगे थर थर,
सदियों का वैषम्य महल यह,
क्षण में होगा खण्डहर खण्डहर॥

तेरे एक इशारे पर फिर,
सुप्त खड्‌ग झंकार उठेगी।
चिर पवित्र स्वातंत्र्य युद्ध में,
यौवन की मनुहार उठेगी॥

चमक उठेगी सहसा सोई,
जौहर की पावन चिनगारी।
जाग उठेगी अपमानों के,
बदले की सोई तैयारी॥

चल तू मेरे साथ वीरवर,
बन प्रलयंकर निर्भय होकर।
जो तेरा परिहास करें तू,
आज मार दे उनको ठोकर॥

तभी मिलेगी तुझे सफलता,
ले जिसका अभिमान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

तेरी सूखी हुई नसों में,
अत्याचार भरी युग-वाणी।
उतर आज बिजली-सी जग के,
तड़कादे बन्धन कल्याणी॥

बोल उठा हिन्दू मानव से,
उस पुराण का अक्षर अक्षर।
बोल उठा मुस्लिम मानव से,
उस क़ुरान का अक्षर अक्षर॥

" एक प्राण, दो तन बलशाली,
करो न यह विस्मृत निज मन से।
सर्व श्रेष्ठ है अरे! मृत्यु इस,
परवशता के जड़ जीवन से॥

हिन्दू मुसलमान से पहिले,
तुम दोनों रे हिन्दुस्थानी।
राज विदेशी आज मिटादो,
राष्ट्र धर्म को दे कुरबानी "॥

जिसे मिटाने या मिटने की,
अटल प्रतिज्ञा ठान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

तू जीवन के क्षुद्र मोह में,
मानवपन भी खोता आया।
निबल और निस्तेज युगों से,
चिर अपमानित होता आया॥

जीवन से अनुराग तुझे क्यों,
और मृत्यु से क्यों डरता है?
जीवन में सुख और मरण में,
दुख का अनुभव क्यों करता है?

तुझे अरे! सुख-दुख दोनों की,
पलकों में जीना ही होगा।
जीवन और मरण दोनों की,
पलकों में जीना ही होगा॥

फूलों-सी हँस उसे निमिष में,
तेरी क्षीण जवानी रोती।
तेरा जीवन अगर मृत्यु को,
देना सीखे अरे चुनौती॥

योग्य समय का तुझे निमन्त्रण,
जिसे आज पहचान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगान्तर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

पश्चिम की वह ढंकी सभ्यता,
नग्न रूप में नाच उठी है।
शासक दल की वह हत्यारी,
छिपी क्रूरता जाग उठी है॥

उन गोरे अंगों से निकली,
छिपी राक्षसी काली छाया।
पश्चिम की उस राजनीति की,
प्रगट हुई शैतानी माया॥

तुम भी अपनी आँखों में अब,
जलने दो अंगार प्रलय की।
बढ़े चलो बस बढ़े चलो तुम,
लिये तीव्र हुंकार विजय की॥

पीछे मुड़ कर मत देखो तुम,
दीं तुमने कितनी आहुतियाँ।
लक्ष्य तुम्हारा स्वयं कहेगा,
क़ुरबानी की पावन कृतियां॥

चले चलो तुम बलि के पथ पर,
जिसको पावन मान चला मैं।
अपनी गति में लिये युगांतर,
लो रोको तूफ़ान चला मैं॥

हम करेंगे या मरेंगे :—

कह उठा यों वृद्ध बाग़ी,
जाग उठ मेरी जवानी ।
कह उठा यों युवा बाग़ी,
भभक उठ मेरी जवानी ॥

अग्नि--वीणा पर प्रलय का,
स्वर सुना मेरी भवानी ।
और जगती को सुनादे,
द्रोह की मेरी कहानी ॥

ओ दिगम्बरी ! मुझ दिगम्बर,
को चढ़ा दे हिम--शिखर पर ।
व्योम की नीली लहर पर,
नाच उट्ठूं मैं भयंकर ॥

जग जलधि को आज मथकर,
तू मृतक को अमर कर दे।
विश्व का अनुताप-विष तू,
आज मेरे कण्ठ धर दे॥

जब जगी तू अग्नि बाले,
क्रांति का उन्माद जागा।
सूर्य जागा, सोम जागा,
द्रोह का संवाद जागा॥

जब जगी तू उग्र रूपिणि,
विश्व का संग्राम जागा।
वीरता छाती नियति की,
राष्ट्र का अभिमान जागा॥

भूमि—गोल ख—गोल तेरी,
चरण—ध्वनि सुन डगमगाते।
क्षितिज के निस्सीम छोरों,
पर प्रलय का गीत गाते॥

मैं सधे स्वर में सुनाता,
मनुज की दारुण कहानी।
तू उसी स्वर को बनाती,
विश्व का परित्राण रानी॥

तू युगों से जिस तरह,
लिखती रही मेरी कहानी।
आज भी लिख अग्नि मय,
जलते हुए दिल की कहानी॥

दे रहा नर जवानी के,
साथ विप्लव को निमन्त्रण।
बदलता है अमङ्गल के,
आज वह प्रत्येक क्षण क्षण॥

आज हम भी अग्नि खाकर,
अग्नि--पथ पर चल पड़े हैं।
हमें भी संसार देखे,
हम कहां आकर अड़े हैं॥

द्रोह क्रमशः रवि-किरण सा,
छा रहा भू पर हमारा।
अग्नि वाही बन जगत में,
आ रहा ख़ूनी सबेरा॥

नये युग की नव प्रभाती,
से जगाता नव्य यौवन।
क्रान्तिकारी स्वर--लहर में,
जागरण सन्देश नूतन॥

खून में लथपथ अवनि के,
शेष फिर अरमान जागे।
शहीदों की क़ब्र से फिर,
इन्क़लाबी गान जागे॥

शीश वे जो चढ़ चुके थे,
ज़ालिमों की शूलियों पर।
वक्ष वे जो तन चुके थे,
ज़ालिमों की गोलियों पर॥

जग उठे पूर्ण करने,
निज अधूरी साधनाएं।
जग उठी जलियान वाला,
बाग़ की ठंडी चिताएँ॥

कर पिकी भी क्रान्ति-दर्शन,
छोड़ पंचम गीत मंथर।
आमु-वन में भैरवी सी,
गा उठी सुन द्रोह का स्वर॥

मुरलिका--मृदु बीन पर उन,
चल रहे कोमल करो से।
झर उठी विद्रोह की,
चिनगारियां सातों स्वरों से॥

हम हुए व्याकुल हमारे—
प्राण में विद्रोह जागा।
मुक्ति पाने के लिये, जीवन—,
-मरण का मोह त्यागा॥

सह सकेंगे हम नहीं अब,
आज पशु--सी ज़िन्दगानीं।
ना सुनेंगे ही किसी के,
ज़ुल्म की काली कहानी॥

दासता को मार ठोकर,
जब कहा आज़ाद हैं हम।
कौन कह सकता हमें फिर,
चिर विकल नाशाद हैं हम॥

प्रण हमारा है यही, "हम,
पैर आगे ही धरेंगे।"
है यही नारा हमारा,
"हम करेंगे या मरेंगे॥

कैसे आज मनाऊँ होली ?

आर्तनाद—सन्ताप जगाती
फिर आई मेरे घर होली।
कैसे आज मनाऊं होली ?

सदियों से चिर अपमानों की,
छाया में हम जीते आये।
परवशता की हथकड़ियों को,
हम मज़बूत बनाते आये॥

हम भूखे कंकाल, हमारी,
हड्डी पर सत्ता का नर्तन।
हाहाकारों की लपटों में,
होता भस्म हमारा जीवन॥

मैंने सोचा, अरे तड़ातड़,
क्यों न तोड़ दें हम ये बन्धन?
हुआ अरे मज़बूर मगर मैं,
"भाई ही भाई का दुश्मन"॥

मैं बोला—"तुम ज़रा उठो तो,"
किन्तु अरे ये तनिक न पिघले।
इनमें शेष रुद्र-सी ताक़त,
भूले ये हड्डी के पुतले॥

क्यों न मिले फिर कमज़ोरी से,
रोटी के बदले में गोली?
आर्तनाद—संताप जगाती,
फिर आई मेरे घर होली॥

चहक रही बागों में बुलबुल,
डाल डाल पर चिड़ियां गातीं।
अपनी पेड़ों की बस्ती में,
आज़ादी का मोद मनातीं॥

अधर ऊर्ध्व कर रंग-बिरङ्गी,
प्रमुदित कलियां चिटक रही हैं।
लास-सनी, मधुमास बनी नव-
-बेलें तरु से लिपट रहीं हैं॥

ले समीर सौरभ सस्मित कुछ,
अल्हड़ सा, कुछ दीवाना सा।
धीमी सांसों से बांसों में,
ले चलता एक तराना सा॥

पुलिनवती गम्भीर व्रती--सी,
त्रस्त नहीं, अलमस्त जा रही।
वन्य भूमि रङ्गीन पलाशों—
—से, स्वर्गोपम मान पा रही॥

यह प्रकृति का देश, सुनहरी-
रवि-किरणें सोना बरसातीं।
साम्य लिये छन छन कर अपना,
मुक्त सुनहरा प्यार लुटातीं॥

आती रात, गात में भरती—
—पुलक, सुधा-बूंदें ढरकाती।
कर्मवीर-सी, तीक्ष्ण तीर-सी,
मुदित खगावली आती-जाती॥

इन्द्र धनुष के सप्त रंग-से,
रंगे हुए हैं रे जिनके पर।
रहते हैं आज़ाद प्यार से,
दाना दाना चुगते हैं पर॥

सारी प्रकृति में भी चलता,
सबल-निबल का अविकल चक्कर।
फिर भी सब अलमस्त सुरक्षित,
चलते हैं अपनी सदा डगर॥

देख हमारा पतन आज वे,
करते मिलकर सभी ठिठोली।
"पराधीन चालीस कोटि तुम,
कैसी अरे ! तुम्हारी होली ?"

पड़ी पड़ी रो रही झोपड़ी,
घर घर में है क़हर समाया।
भग्न भूमि भारत के उर में,
पैर पैर पर मातम छाया॥

तमसावृत क्यों प्राण तुम्हारे ?
मिटा सके तुम क्यों न दनुजता ?
है शत शत धिक्कार रही रे !
तुम्हें विश्व की आज मनुजता॥

चालीस कोटि रे महाबली,
तुम हो निराश मत साँस भरो।
तुम मानव अपनी ताक़त पर,
विश्वास करो, विश्वास करो॥

कड़ कड़ कड़ कड़ कड़क उठो तुम,
बिजली-से रजपूत चलो तो ।
पापों का अम्बार जलाने,
मां के वीर सपूत चलो तो ॥

रणस्थली में रुण्ड-मुण्ड के,
बीच तुम्हारी "जय" की बोली ।
करे पूर्ण स्वाधीन देश को,
तभी मनायें हिल-मिल होली ॥

कैसे आज मनाऊं होली ?

समाप्त

?

आपको अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये हृदय और मस्तिष्क को बल देने वाले ज्वलन्त और निर्भीक साहित्य की आवश्यकता है ?

आप कीड़ों जैसी नारकीय ज़िन्दगी बिताने वाले भारतवर्ष के करोड़ों मज़दूरों और किसानों का सच्चा हाहाकार घर बैठे देखना और सुनना चाहते हैं ?

—नग्न श्रृङ्गार के पतनकारी साहित्य से जिसने आपको विलासी, निर्बल और सच्चे अर्थों में नपुंसक बना दिया है तथा जो दासत्व की ज़ंजीरों को मज़बूत बनाने वाला है— बचना चाहते हैं ?

यदि हां तो--

--राष्ट्रीय कवि प्रहलाद पांडेय "शशि" द्वारा-

संचालित-मध्य भारत के एकमात्र राष्ट्रीय

प्रकाशन स्थान :—

युग प्रवर्तक ग्रन्थमाला कार्यालय

उज्जैन (मध्य भारत)

की प्रकाशित पुस्तकें

अवश्य खरीदिये !

Date
Department

विद्रोह अने वेदनानी वाणी

"विद्रोहिणी"

आलांबा ओगणत्रीस गीतोमा एना शब्दों ने नवुंजोम आपवाना अने भूख. दुःख, पीड़ा, सन्ताप, मृत्यु ने भावने जाग्रत राखवामा ठीक सफलता प्राप्त करी छे केटलांक गीतो तो वांचताज अन्तरहलावी मूके एटलां प्रबल पण छे। आ गीतो ना वाचन आपणने उत्तेजित करवामां सफल थाय छे, त्यारे एम मानी शकाय के एनु श्रवण विद्रोहना भाव जगाववामा अवश्य सफल नीवड़े। कविनो आत्मा वर्तमान राज व्यवस्था अने समाज व्यवस्था थी त्रासेलो छे अे वर्तमान जगत बदलवा चाहे छे. ए जुए छे के नवो युग जन्मी रह्यो छे. एजुए छे के जेनी दबावी दबावी ने पृथ्वी ना पेटालमा बेसाड़ी दीधा छे तेओ हवे उठे छे. ने तेथीज धरणी ध्रूजे छे. ए उठनार ने कवि जोस अने जोम आपे छे. कोमलतानुं आ काव्य संग्रह मा स्थान नथी। "नरपति से" विद्रोह नुं परन्तु नवीन दृष्टि बिंदु थी रचायेलुं छे, राजानी मरी गयेली मानवता अनै शोर्य संस्कारों ने जगाड़वानो एमा प्रबल प्रयत्न छे, काव्य दृष्टि ए पण आ गीत सुन्दरभाओ जागृत करे छे. कविए हमेशा आशा राखी छे के आखरेते—

सर्वनाश की ज्वाल चिता पर, विश्व-शान्ति की बीन बजेगी।

* * *

मत रोको तुम मेरे पथ को, जिस पर बहती शत शत गंगा।
आहुतियां बनकर चढ़ने दो, मैं कलियुग का भूखा नंगा।

आ कलियुग ना "भूखा-नंगा उपर जगत नुँ मंडाण
कवि क्यारेक पने भान करावे छे ने क्यारेक पना दिल
धधकती आग ने वाणी द्वारा व्यक्त करे छे आ वा
सबल छे अने तेथी सचोटपण छे आवी वाणी
उच्चार करनार कवि "शशि" नुं अमे अभिनन्द
करीए छीए।

ता० २४-६-४२ गुजराती दैनिक "जन्मभूमि" बम्ब

—हमारा विश्वास है कि मुर्दा दिलों में भी 'विद्रोहिण
की कविताएं प्राण डाल सकती हैं।

ता० १६-१०-४२ पाक्षिक "कृषक-बन्धु" खंडवा

—प्रहलाद पांडेय योग पात्र गुण और स्नेह के संग्र
में मुब्तला नज़र आते हैं।......बुलबुल (मगर कौ
के घोंसले में) मैं मानता हूँ पण्डित प्रहलाद पांडे
को जिनकी "विद्रोहिणी" रचना नितान्त अशुद्ध, दुर्ब
मगर स-तेज है.........प्रहलाद पांडेय की कविता
(ख़ाक) पत्थर के कोयले का चूर हैं जिनको दूर
भी सत्य की दियासलाई दिखलाने से दावानल दहक
का आशा-मय अन्देशा है। पांडेयजी के गीतों में स्व
नहीं, मगर सन्देशा है।

मासिक "विक्रम" उज्जैन
अगस्त १९४२.